P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-10* June- 2021
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज विरचित ’परशुरामोदयम्’ महाकाव्य में अलंकारों की झंकार

The Chimes of Ornaments In The Epic 'Parasuramodayam' By Prof.Sudhikanta Bharadwaj

Paper Submission: 03/06/2021, Date of Acceptance: 15/06/2021, Date of Publication: 26/06/2021

बलवंत सिंह चौहान
सह–आचार्य,
संस्कृत विभाग,
डॉ. बी.आर.ए. राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर, राजस्थान, भारत

सारांश

प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज विरचित ’परशुरामोदयम्’ महाकाव्य संस्कृत भाषा का नवीनतम महाकाव्य है। वैदिक संस्कृति से ओत–प्रोत इस महाकाव्य में 17 सर्ग और 1504 पद्य हैं, जिसमें भृगु ऋषि द्वारा स्थापित आश्रम की शिक्षा–दीक्षा से लेकर रेणुका पुत्र भगवान् विष्णु के अंशावतार परशुराम के जन्म तक का वृत्तान्त मिलता है। श्रृंगाररस प्रधान काव्य में नायक रूप से ऋचीक ऋषि और नायिका के रूप में उनकी भार्या सत्यवती को कविवर ने स्थान दिया है, परन्तु कविवर ने परशुराम के प्रति प्रगाढ़ आस्था होने के कारण इस नामकरण ’परशुरामोदयम्’ महाकाव्य किया। कृति में भावों की अभिव्यक्ति को प्राञ्जल व प्रभावशाली बनाने में अलंकारों ने महती भूमिका अदा की है। इनके काव्यरूपी उपवन में अलंकार पुष्पगुच्छ के समान सर्वत्र अभिलसित हुए हैं। इतिवृत्त प्रधान महाकाव्य में कविवर ने अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, रूपक, उदात्त, वक्रोक्ति, भ्रान्तिमान, व्यतिरेक आदि अनेकविध अलंकारों का सहसा प्रयोग किया है।

The epic 'Parasuramodayam' by Prof.Sudhikanta Bharadwaj is the latest epic in Sanskrit language. Infused with Vedic culture, there are 17 cantos and 1504 verses in this epic, in which the account of the education-initiation of the ashram established by Bhrigu Rishi to the birth of Parashurama, the son of Renuka, the son of Lord Vishnu, is found. In the Shringaras head poetry, the poet has given place to the rich sage as a hero and his Bharya Satyavati as the heroine, but the poet named this epic 'Parasuramodayam' due to his strong faith in Parashurama. Alankars have played an important role in making the expression of feelings in the work original and effective. In his poetic garden, the ornaments are everywhere like a bunch of flowers. In the epic of chronicle, the poet has often used various forms of alliteration, synth, simile, utpreksha, interpretation, parable, metaphor, sublime, vakrokti, illusory, vyatireka etc.

मुख्य शब्द : द्विजकुलैः, शुभांशुकीर्ति, निराशान्धकारे, कामयज्ञे, ह्यकाशशोभा, सान्त्व्यमाना। Dwijakulayah, Shubhansukirti, Despairing, Kamayajye, Hyakashobha, Santvyamana.

प्रस्तावना

काव्य में अनुप्रास–उपमादि काव्य–शरीर शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं, इसलिए वे अलंकार कहलाते हैं। आचार्य दण्डी ने काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहा है – ’काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते’। जिस प्रकार रमणी का मुख सुन्दर होने पर भी अलंकार के अभाव में सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार काव्य में सौन्दर्य के रहने पर अलंकार के बिना काव्य में पूर्ण चमत्कार नहीं दिखाई देता हैं।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।।[1]

आचार्य जयदेव के अनुसार, ’जिस प्रकार उष्णताविहीन अग्नि की कल्पना असम्भव है, उसी प्रकार अलंकार–विहीन काव्य की कल्पना भी असम्भव है, उपहसनीय है’–

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।।

इस प्रकार सभी आचार्यों ने अलंकारों के महत्त्व को समझा और अपने–अपने ग्रन्थों में इनका गम्भीरतापूर्वक विवेचन किया है।

शोध का उद्देश्य

1. साहित्य के भावपक्ष और कला पक्ष की बारीकियों का अध्ययन कर रहे अध्येताओं और शोधार्थियों को साहित्य सृजन के प्रति उन्मुख करना।
2. अलंकारों की उपादेयता बतलाकर साहित्य की श्रीवृद्धि करना।
3. शोधार्थियों और अध्येताओं को विविध अलंकारों के लक्षणों से अवगत करवाकर उनके सुष्ठु प्रयोग से अवगत करवाना।
4. काव्य में प्रयुक्त सौन्दर्य बोधक अलंकारों से सहृदय पाठकों को अवगत करवाकर नवीन उदात्त कृति के मूल्यांकन के व्याज से नवसृजन को आत्मसात् करने का सुअवसर प्रदान करना।
5. शोधार्थियों और अध्येताओं को महाकाव्य में प्रयुक्त अनेकविध अलंकारों एवम् उनके लक्षणों से अवगत करवाना ताकि वे विविध काव्यकृतियों का आस्वादन कर सकें और नवीन मानदण्डों को अंगीकार कर सकें।

साहित्य सर्वेक्षण

आलोच्य शोध–पत्र कविवर प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज रचित 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य पर आधारित है। शोधलेख में इस महाकाव्य में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन किया गया है। 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य भारद्वाज इन्टरनेशनल पब्लिसर्ज, नई दिल्ली से प्रकाशित है। उक्त कृति पर महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) से डॉ. बलवन्त सिंह चौहान के निर्देशन में 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य : एक काव्यशास्त्रीय अनुशीलन' शीर्षक से शोध–प्रबन्ध पर कार्य चल रहा है। वैदिक संस्कृति व लोकमंगल की भावना से ओत–प्रोत इस कृति पर मेरे द्वारा 'प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज रचित 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य : एक अनुशीलन' शोध आलेख एंथोलोजी रिसर्च जर्नल कानपुर व एक अन्य आलेख 'प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज 'कल्प' विरचित 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य में छन्द–योजना' इनोवेशन रिसर्च जर्नल, कानपुर से प्रकाशित हो चुके हैं। नूतन कृति होने के कारण इस पर किया जाने वाला कार्य अब तक अत्यल्प ही है। इस कारण इस पर शोध और समीक्षा की अनेकविध सम्भावनाएँ प्रबल हैं। जहाँ तक मेरी दृष्टि में अलंकारों का विवेचन सम्भवतः प्रथम बार ही इस शोध आलेख द्वारा किया जा रहा है।

विषय–उपस्थापन

प्रो. सुधीकान्त भारद्वाज ने अपने 'परशुरामोदयम्' महाकाव्य में अलंकारों की झड़ी–सी लगा रखी है। कतिपय अलंकारों की चर्चा इस प्रकार करना चाहूँगा –

अनुप्रास

लक्षण – वर्णसाम्यमनुप्रासः।[2]

अर्थात् वर्णों की समानता (स्वरों की असमानता होने पर भी व्यञ्जनों की समानता) अनुप्रास अलंकार है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं –

निरन्तराभ्यासकठोरचित्तभू–
मिगा विषाक्ता मदनेषवो वृथा।
गता विभग्ना विततं विषं परं,
शनैःशनैः प्राकटयन्मनोरुजम्।।[3]

यहाँ प्रथम चरण में न्, र्, त्, भ् की आवृत्ति हुई है। द्वितीय चरण में म्, ष्, व् वर्ण की आवृत्ति हुई है। तृतीय चरण में त् और व् की आवृत्ति हुई है। चतुर्थ चरण में श् और न् वर्णों की आवृत्ति हुई है अतः यहाँ वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

इसी प्रकार –

चित्तस्य वृत्तिर्न सदा समाना,
संलक्ष्यते सा खलु भिन्नचेष्टा।
काले च काले कृकलासवर्णा,
भिन्ना यथा भिन्नसमागमेषु।।[4]

यहाँ प्रथम चरण में त्, न्, व् और स् वर्ण की आवृत्ति हुई है और द्वितीय चरण में स्, ल्, न् वर्ण की आवृत्ति हुई है। तृतीय चरण में क्, व्, ल् वर्णों की आवृत्ति हुई है। चतुर्थ चरण में भ् व न् वर्णों की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

अन्त्यानुप्रास का एक उदाहरण इस प्रकार है –

पूर्वं गतेनेव तदाहता सा,
निरङ्गदेहेन समागृहीता।
व्याधेन वातायुसुतेव विद्धा,
प्रकम्पिता छद्मछलेन भीता।।[5]

श्लेष अलंकार

लक्षण – श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।।[6]

अर्थात् श्लेष अलंकार वह होता है जिसे श्लिष्ट (चिपके हुए) पदों के द्वारा अनेक अर्थों के अभिधान में देखा जाता है।

'परशुरामोदयम्' महाकाव्य के दशम सर्ग में ऋचीक ऋषि द्वारा यज्ञ प्रारम्भ किया जाता है। छात्रों द्वारा उच्चरित महायज्ञ की उद्घोषणाओं से दिशाएँ गूंज उठती हैं। आकाश हिलती हुई उन ध्वजाओं से भर जाता है जिनके मजबूत दण्ड शिष्यों ने पकड़े थे। आकाश उस समय इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानो वह ऊपर को पंख किये हुए पक्षियों से भरा हो।

ध्वजैः शुभ्रैः शिष्यैः सुधुतदृढ़दण्डैः प्रचलितैः,
समुत्पक्षैराकीर्णमिव विबभौ खं द्विजकुलैः।
हयैरासीमान्तं प्रवरगतिवद्भिः सबटुकैः,
धरा शिक्षाशालात्वमगमदिवातोयनिकरम्।।[7]

यहाँ द्विज में श्लेष है। द्विज का अर्थ वेदपाठी छात्र और पक्षी है।

वक्रोक्ति अलंकार

लक्षण – अन्यस्यान्यर्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा।।[8]

अर्थात् वक्रोक्ति वह शब्दालंकार है जहाँ श्लेष के कारण अथवा काकु के कारण किसी के अन्यर्थक वाक्य को किसी अन्य अर्थ में लगा लिया जाता है। राजा गाधि की पुत्री सत्यवती की प्रथम मुलाकात सरस्वती नदी के किनारे युवा ऋचीक से होती है और सत्यवती को कामदेव के बाणी बींध देते हैं। वह किसी से इस विषय में बातचीत नहीं करना चाहती है परन्तु चतुर सखी सुजाता उसे काकु वक्रोक्ति में कहती है कि मैंने सुना है कि तूने किसी ब्राह्मण के मन को बाणों से बींध दिया है। उस बेचारे के

हृदय में चोट लगी है। वह दुःखी है और उसका तप भंग हो गया है। मेरी शुभकामना है कि तू उज्ज्वल शरीर वाले, मध्य में घाव के समान चिह्न को धारण करने वाले, उज्ज्वल किरणों के रूप में कीर्ति को धारण करने वाले और शान्तिरूप शीतलता रखने वाले चन्द्रमा का इसी कुञ्ज में जीभर कर सेवन कर।

श्रुत्वा सखिं सुजाताऽब्रवीत श्रुतं ते शरविद्धचितः।
कश्चिद् द्विजो मर्महतः विषन्नः,
कृतस्त्वया भग्नतपा वराकः।।[9]
सेवस्य चन्द्र द्विजतुल्यवृत्तं,
सिताभदेहं व्रणलक्ष्ममध्यम्।
शुभांशुकीर्तिं शुभकामनैषा,
प्रशान्तिशैत्यं सततं यथेष्टम्।।[10]

यहाँ सुजाता सखि द्वारा काकु के द्वारा ऋचीक ऋषि से आसक्त सत्यवती को प्रेम होने की बात कही जा रही है। अतः काकु वक्रोक्ति अलंकार है।

उपमा अलंकार

लक्षण – साधर्म्यमुपमा भेदे पूर्णा लुप्ता च।।[11]

अर्थात् उपमान और उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का कथन उपमा अलंकार है। यह उपमा पूर्णा और लुप्ता दो प्रकार की होती है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

वृद्धिमाप्नुत यदा शनैःशनैः,
र्लालनेन जमदग्निरर्भकः।
सूर्यबिम्ब इव तेजसा युतो,
भास्वरोऽधिकतरो बभूव सः।।[12]

उपर्युक्त उदाहरण में 'जमदग्नि' उपमेय, 'सूर्यबिम्ब' उपमान, 'इव' उपमावाचक शब्द तथा 'तेज' साधारण धर्म है। अतः यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

इसी प्रकार –

निर्धारिते चावसरे बभूव, प्रसंगयोग्यो निकरो जनानाम्।
सम्पूरिताशेषतपोवनं च, ह्याकाशशोभां शरदीव देधे।।[13]

यहाँ 'तपोवन' उपमेय, 'शरद्कालीन आकाश' उपमान और 'इव' उपमावचक शब्द है।

अन्य उदाहरण –

तदा सभायां सहसा मनुष्यः,
समायातः कश्चिदतीव खिन्नः।
काचित् सहासीत् युवतिः सलज्जा,
नम्रा मयूरीव शनैश्चरन्ती।।[14]

यहाँ 'युवती' उपमेय, 'मयूरी' उपमान तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है।

सत्यवती धर्मज्ञा पूता पतिपरायणा।
छायेवानुसरन्ती तं चर्यामस्य चकार सा।।[15]

उपर्युक्त पद्य में 'सत्यवती' उपमेय, 'छाया' उपमान तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है।

इसी प्रकार

तदैव रेणुका शुद्धा चेतनेव तपस्विनाम्।
अनुबभूव सेष्टस्य सिद्धयै प्रसववेदनाम्।।[16]

यहाँ 'रेणुका' उपमेय, 'शुद्ध चेतना' उपमान तथा 'इव' उपमावाचक शब्द है।

रूपक अलंकार –

लक्षण – तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।।[17]

अर्थात् जहाँ उपमान और उपमेय का अभेदारोप होता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं –

दृष्ट्वा तेजः प्रथममिलने कार्मुके कौशलं चा,
भूताध्मातं प्रणयसुरभेश्चित्तपुष्पं नवं मे।
तस्मात्कालादवयरयदहं भर्तृरूपे भवन्तं,
नान्यः कश्चिद् जगति भविता सर्वकाले पतिर्मे।।[18]

यहाँ 'चित्त' उपमेय पर 'नवीन पुष्प' उपमान का तथा 'प्रेम' उपमेय पर 'सुगन्ध' उपमान का अभेदारोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

इसी प्रकार –

किञ्च ब्रूयाम् प्रणयिहृदयस्तर्कबुद्धेरतीतो,
देशं कालञ्च न गणयति प्राणमन्त्रैः सहेतः।
प्रीतेर्वेद्यां परवशमना हूयते कामयज्ञे,
साध्यं लक्ष्यं मिलति न तु वादृष्टहेतोरधीनम्।।[19]

यहाँ 'प्राण' उपमेय पर 'मन्त्र' उपमान का, 'प्रीति' उपमेय पर 'वेदी' उपमान का तथा 'काम' उपमेय पर 'यज्ञ' उपमान का अभेदारोपण होने के कारण रूपक अलंकार है। इसी प्रकार –

भृशं सान्त्व्यमाना न भर्त्रा कृशांगी,
दधौ धैर्यदण्डं निराशान्धकारे।
पपाताधिगर्ते विमूर्च्छावसन्ना,
गतालोकर्दृष्टिर्यथा भ्रंसमाना।।[20]

यहाँ 'निराशा' उपमेय पर 'अन्धकार' उपमान का और 'धैर्य' उपमेय पर 'दण्ड' उपमान का अभेदारोपण होने के कारण रूपक अलंकार है।

इसी प्रकार सप्तम सर्ग का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

विलोकयन्ती नयनार्द्रबिम्बे, मुनेः स्वमूर्तिं गलिताङ्गराशिः।
चिक्षेप माल्यं मुनिकण्ठवृत्ते, चार्घाश्रुधारां चरणार्कबिम्बे।।[21]

उपर्युक्त उदाहरण में 'चरण' उपमेय पर 'सूर्य' उपमान का और 'अश्रु' उपमेय पर 'अर्घ' उपमान का अभेदारोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास अलंकार

लक्षण – सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येण परेण वा।।[22]

अर्थात् अर्थान्तरन्यास अलंकार में सामान्य से विशेष का और विशेष से सामान्य का कथन होता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

षष्ठ सर्ग में सत्यवती की सखी सुजाता दूती के रूप में ब्राह्मण शिरोमणि ऋचीक ऋषि के पास आश्रम में आती है और कहती हैं कि रूप और शील से युक्त आप पर वह पहले दिन से ही आसक्त है। वह केवल धनुष के द्वन्द्व युद्ध में ही पराजित नहीं हुई अपितु मन के द्वन्द्व युद्ध में भी पराजित हो गई है। उसी दिन से वह अपने मन को खोकर ब्राह्मण के मन का ही सेवन कर रही है। जो पराजित हो जाता है वह दासता के भाव से अभिभूत होकर जीतने वाले से कभी ध्यान नहीं हटाता।

आसक्ता सा प्रथमदिवसाद् भार्गवे रूपशीले,
कौदण्ड्ये सा नु ननु न जिता द्वन्द्वयोगेऽपि चैत्त्ये।
तस्मात् कालाद् हृतनिजमनाः सेवते विप्रचितं,
जेतुर्ध्यानाच्च्ययवति न कदा दास्यभावाभिभूता।।[23]

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसी प्रकार ऋचीक ऋषि 1000 श्यामकर्ण अश्व लेने के लिए अपने शिष्यों के साथ नदी के अगाध जल को पार करते हैं। इसी प्रसंग में वे अपने शिष्यों से कहते हैं कि वन के सूखे वृक्षों को नदी में गिराओ और विधिपूर्वक नदी का नया पुल बनाओ। कार्य कठिन अवश्य है परन्तु यह नहीं हो सकता कि हमें सफलता नहीं मिले। उत्साहपूर्वक शक्ति का प्रयोग करने पर क्या सुलभ नहीं हो जाता।

शुष्कान् द्रुमान् वनरुहः खलु पातयेयुः,
निर्मीयताञ्च विधिना नवसिन्धुसेतुः।
कार्यं भवेत् सुकठिनं न तु सिद्धिवर्जं,
ह्युत्साहमण्डितबलेन न किं सुलभ्यम्।।[24]

इसी प्रकार नवम सर्ग में निर्धारित अवधि के दिन नजदीक आने पर भी ऋचीक ऋषि के आगमन का कोई समाचार न सुनकर राजकुमारी सत्यवती उत्सुकता के कारण अधिक व्याकुल हो जाती है। इच्छा की अधिकता सन्देह रहित विषय में भी शंका के कारण पीड़ा उत्पन्न कर देती है। यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है –

संक्रान्ताश्च यथा यथा हि दिवसा निर्धारितस्यावधे,
रौत्सुक्येन तथा तथा नृपसुता भूयः समापीडिता।
आश्वस्तापि मुनीशशक्तिविषये चिन्तां दधौ मानसी,
मिच्छाधिक्यमसंशितेऽपि कुरुते वै शंकयोत्पीडनम्।।[25]

इसी प्रकार –

मुनेः करस्पर्शसुखेन भीतिं,
जहौ मृगश्चः शनैः प्रशान्तः।
समर्थसत्त्वं शरणाय गत्वा,
बिभेति कस्मादपि नो विपन्न।।[26]

अर्थात् 'मुनि के हाथ के स्पर्श से हिरण ने भय त्याग दिया और धीरे–धीरे शान्त हो गया।' यह विशेष कथन है। 'समर्थ की शरण में आकर विपत्ति में पड़ा हुआ व्यक्ति किसी से नहीं डरता'। इस सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उत्प्रेक्षा अलंकार –

लक्षण – सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।।[27]

अर्थात् जहाँ पर प्रकृत (उपमेय) की सम (उपमान) के साथ सम्भावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है।

महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में भृगु ऋषि निरन्तर भ्रमण करते हुए सरस्वती नदी पर पहुँचते हैं। शीशे के समान निर्मल जल में उन्होंने स्नान किया। उसकी खुली हुई दाढ़ी और जटाओं से ढका हुआ उनका शरीर प्रभातकाल में ऐसा सुन्दर लग रहा था, मानो वह ओस से भीगे हुए काँस के गुच्छों से ढका हुआ हो।

काचाच्छतोये कृतमज्जनः सः,
धौतश्लथश्मश्रुजटाकलापैः।
आच्छन्नयष्टिः शुशुभे प्रभाते,
नीहारसिक्तैरिव काशगुच्छैः।।[28]

यहाँ 'इव' का प्रयोग क्रिया के साथ हुआ है और सम्भावना को प्रकट कर रहा है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

इसी प्रकार तृतीय सर्ग में ऋचीक ऋषि और राजकुमारी परस्पर कौतुहल देखने की इच्छा से और दूसरे की विद्या को ग्रहण करने की इच्छा से दोनों प्रतियोगियों की भावना से तैयार हो जाते हैं मानो वे मिथुन राशि में दो मुख्य तारे हों।

परस्परं कौतुहलं दिदृक्षू,
परस्य विद्यामिव तौ जिघृक्षू।
समुद्यतौ वै प्रतियोगिभावात्,
नृयुग्मराशाविव मुख्यतारे।।[29]

मिथुन राशि की आकृति स्त्री–पुरुष के जोड़े के समान होती है। अतः ऋचीक और सत्यवती के जोड़े की मिथुन राशि से तुलना की गई है।

इसी प्रकार तृतीय सर्ग में ही –

तदा विचक्राम दृढाङ्गदेहः,
समायतो स ध्वलोत्तरीयः।
स मुनिराह्वानचलाङ्गयष्टिः,
प्रकम्पचालीव हिमाद्रिखण्डः।।[30]

यहाँ 'इव' का प्रयोग क्रिया के साथ हुआ है और सम्भावना की गई है कि ऋचीक की देहयष्टि मानो भूकम्प से हिलता हुआ हिमालय का टुकड़ा हो।

इसी प्रकार अष्टम सर्ग में

श्रुत्वा विदग्धवचनानि मुनिर्नृपस्य,
प्रोवाच वेदजलफेन इवामलानि।
वागक्षराणि महता मनसा वदान्यः,
संसेचयन्निव नृपानमृतार्घदानैः।।[31]

यहाँ मुनि के निर्मल वचन इतने स्वच्छ कहे गये हैं मानो वे वेदरूपी जल के झाग हों। यहाँ इव का प्रयोग क्रिया के साथ हुआ है (संसेचयन्निव) और सम्भावना की गई है।

भ्रान्तिमान् अलंकार

लक्षण– भ्रान्तिमान् अन्यिसंवित्तत्तुल्यदर्शने।।[32]

अर्थात् जहाँ पर उसके समान वस्तु को देखने पर जो अन्य वस्तु का भान (प्रतीति) होता है, वह भ्रान्तिमान् अलंकार होता है।

गाधि पुत्री सत्यवती ऋचीक ऋषि पर आसक्त हो जाती है। जब वह बिस्तर पर सोई हुई थी तो पूर्व दिशा में जब चन्द्रमा उदय हुआ तो उसे सूर्य समझकर प्रसन्नता से वह बिस्तर से उठ खड़ी हुई। कामी व्यक्ति को प्रेम के कारण समान वस्तु को देखने से चित्त का भ्रम हो जाता है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

प्राच्यां हिमांशोवुदिते सहर्षं,
रवेर्भ्रमादुज्झितविस्तरा सा।
चित्तभ्रमः कामिजनस्य रागात्,
सदर्शनेनात्र भवेन्न चित्रम्।।[33]

यहाँ सादृश्य के कारण उपमेय 'चन्द्रमा' में उपमान 'सूर्य' का भ्रम हो रहा है।

इसी प्रकार –

भ्रान्त्या प्रविष्टामृतमाप्तुकामा,
सुधांशुकीर्णं तनुतापदग्धा।
लब्ध्वा परं सा विषमप्रभावं,
बभूव भूयोऽपि विदग्धदेहा।।[34]

यहाँ राजकुमारी शरीर के ताप से जलती हुई चन्द्रमा के द्वारा फैलाए हुए अमृत को प्राप्त करने के भ्रम से चाँदनी के मण्डप में प्रवेश करती है।

विभावना अलंकार

लक्षण – क्रियायाः प्रतिषेधोऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।।[35]

अर्थात् कारण का अभाव (प्रतिषेध) होने पर भी फल की उत्पत्ति होना विभावना अलंकार है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

निरन्तराभ्यासकठोरचित्तभू,
मिगा विषाक्ता मदनेषवो वृथा।
गता विभग्ना विततं विषं परं,
शनैः शनैः प्राकट्यन्मनोरुजाम्।।[36]

अर्थात् ऋचीक की मनोभूमि निरन्तर अभ्यास के कारण बहुत कठोर थी, इसलिए कामदेव के विषाक्त बाण उस मनोभूमि से टकराकर भग्न हो गए, परन्तु उनका जो विष फैल गया था उसने धीरे–धीरे मनोरोग को उत्पन्न कर दिया था। यहाँ अपर्याप्त कारण से कार्य की उत्पत्ति कल्पित की गई है। अर्थात् विष फैलना रूप कार्य हो रहा है। इसी प्रकार –

श्रुत्वा सखिं खेदयितुं सुजाता,
ऽब्रवीत् श्रुतं ते शरविद्धचित्तः।
कश्चिद् द्विजो मर्महतः विषन्नः,
कृतस्त्वया भग्नतपा वराकः।।

यहाँ अपर्याप्त कारण से कार्य की उत्पत्ति कल्पित है अर्थात् मन को बाणों से बींधना बताया गया है। अतः विभावना अलंकार है।

व्याजोक्ति अलंकार

लक्षण– व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।।[37]

अर्थात् स्पष्ट रूप से प्रकट हुए वस्तु के स्वरूप का किसी बहाने से छिपाना व्याजोक्ति अलंकार होता है।

महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में कामासक्त सत्यती किसी को भी अपने प्रेम की बात नहीं कहना चाहती है। वह चाँदनी के मण्डप में प्रवेश करती है और कामपीड़ित होकर कल्पना में ऋचीक ऋषि से बातें करती हुई मुख से 'नहीं–नहीं' बोलती है। राजकुमारी की सखी सुजाता के पूछने पर वह बहाने से कहती है कि मैं यहाँ पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी का सेवन करने वन में आई हूँ और भँवरे मुझे काट रहे हैं।

संज्ञामवाप्य भ्रममुक्तदृष्टिर्,
जगाद तां शुष्कगला स्खलन्ती।
ज्योत्स्नामहं पूर्णविधोः सुजाते,
वनेऽत्र संसेवितुमागतास्मि।।[38]

यहाँ राजकुमारी सत्यवती स्पष्ट रूप से प्रकट हुए स्वरूप को किसी बहाने से छुपाने का प्रयास कर रही है। अतः व्याजोक्ति अलंकार है।

समासोक्ति अलंकार

लक्षण – समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।।[39]

अर्थात् समासोक्ति वह अलंकार है जिसे सम अर्थात् (प्रस्तुत और अप्रस्तुत में) समान रूप से समन्वित होने वाले कार्य, लिंग और विशेषण के बल से प्रस्तुत पर अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप कहा जाया करता है।

द्वितीय सर्ग में भृगु ऋषि तीर्थाटन करते हुए कई वर्षों के पश्चात् आश्रम में वापिस आते हैं। आश्रम के पशु पूर्व गुरु को देखकर मुख के अग्र भाग पर लगी हुई घास छोड़ देते हैं और उनकी आँखें स्नेह से आर्द्र हो जाती हैं। वे मुनि को चाटने की इच्छा से अपनी जिह्वा को फैलाते हैं तथा वृक्ष स्थिर होने के कारण उन तक जाने में असमर्थ हैं अतः वे अपनी शाखाएँ झुकाकर मुनि को प्रणाम करते हैं।

तिर्यग्गणः पूर्वगुरुञ्च दृष्ट्वा,
शष्पं परित्यज्य मुखाग्रसन्नम्।
स्नेहार्द्रचक्षुर्मुनिमापयित्वा,
जिह्वा लिलिक्षन् प्रससार रुद्धः।।[40]
वृक्षाः स्थिरत्वाद् गमनेऽसमर्थाः,
शाखाविनामेन मुनिं प्रणेमुः।
द्रव्येषु तादृग्व्यवहारचारः,
स्नेहांशसृष्टिं प्रमिमाति नूनम्।।[41]

यहाँ प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति हो रही है। अतः समासोक्ति अलंकार है।

स्वभावोक्ति अलंकार

लक्षण – स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।।[42]

अर्थात् बालकादि की अपनी स्वाभाविक क्रिया या रूप का वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार कहलाता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

नवप्रारूढ़ं शष्पमवनितले सान्द्ररहितं,
पशुनामास्याग्रैः क्षतमिभपदैश्चापि दलितम्।
बभौ सर्वत्रास्तीर्णमिव हरिताभं मरकतं,
विधेः सृष्ट्याः शोभा प्रकृतिमधुरा धार्यत इह।।[43]

यहाँ वर्षा होने के पश्चात् पृथ्वी पर उगी ताजा हरी घास तथा उस पर विचरण करने वाले हाथियों की स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार –

क्वचिच्चावीक्ष्य प्रांगणपरिसरे पक्षिनिकरं,
कणायोचञ्चुं शावककुलमुखं लालनपरम्।।
मृगीं कुत्राप्यस्थैर्ययुतसुतमालोडनवतीं,
कपेभार्यां वक्षोनिहिततनयां चापि मुमुदे।।[44]

यहाँ आँगन में दानों को चुगते हुए पक्षियों की स्वाभाविक क्रिया का वर्णन किया गया है।

उल्लेख

लक्षण – क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित् एकस्यानेकधोल्लेखो यः स उल्लेख उच्यते।।[45]

अर्थात् जब एक वस्तु या व्यक्ति का अनेक रूप में उल्लेख कर वर्णन किया जाता है, वहाँ उल्लेख अलंकार होता है।

जैसे –

अनध्यायश्छात्रान् शिशिरसुखतां भेकभुजगान्,
यतीन् वै विश्रामौ रमणचरिताञ्चोत्सवसवम्।
ददाति प्रावृड् भिन्नसुखसमुदायान् विविधतो,
ह्यहो प्रावृड्लास्यं प्रकृतिरमणं भाति सततम्।।[46]

यहाँ वर्षा भिन्न–भिन्न लोगों को विविध प्रकार के सुख दे रही है, जैसे छात्रों को अध्ययन से छुट्टी मैंढ़क और सर्पों को शीतलता, योगी लोगों को विश्राम और रमण करने वालों को उत्सव का आनन्द। विस्तार भय से समस्त अलंकारों के उदाहरणों की चर्चा करना असम्भव है। वस्तुतः कविवर 'कल्प' ने महाकाव्य में अलंकारों की सरिता ही बहा रखी है।

निष्कर्ष

'परशुरामोदयम्' महाकाव्य में अलंकार निरूपण नितराम प्रभावशाली रहा है। कविवर ने भाषा को अलंकृत करने के लिए महाकाव्य में अलंकारों की झड़ी–सी लगा रखी है परन्तु कविवर ने अलंकारों को अलंकृत करने वाले अनेकविध उदाहरणों में कहीं भी कृत्रिमता का स्पर्श तक नहीं किया है। साथ ही साहित्यश्री को अलंकृत करने वाले अलंकारों की भाषा भावानुसार ही प्रयुक्त हुई है, कहीं भी कथाप्रवाह में अवरोध उत्पन्न नहीं किया है। 'कल्प' ने आश्रम वर्णन, गृहस्थाश्रम, ऋषि–चरित्र, दाम्पत्य जीवन आदि प्रसंगों में आलंकारिक सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। कविवर ने रसों के अनुसार ही अलंकारों का प्रयोग करके कविता–कामिनी की शोभा में महती वृद्धि की है तथा कृति में प्रयुक्त अलंकार कथा के प्रवाह को आगे बढ़ाते हुए रसभाव को समुज्ज्वल करने में पूर्णतः सहभागी रहे हैं। इस प्रकार कविवर ने अपनी वैदिक संस्कृति से ओत–प्रोत विश्वमंगलकामना वाली कृति को आपादमस्तक अलंकारों से सुसज्जित किया है।

अंत टिप्पणी

1. *साहित्यदर्पण 10/1*
2. *काव्यप्रकाश 9/79*
3. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/1*
4. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/66*
5. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/53*
6. *साहित्यदर्पण 10/11*
7. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 10/49*
8. *साहित्य दर्पण 10/9*
9. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/64*
10. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/66*
11. *काव्यप्रकाश 10/125*
12. *काव्यप्रकाश 15/1*
13. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 16/43*
14. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 16/50*
15. *काव्यप्रकाश 17/6*
16. *काव्यप्रकाश 17/92*
17. *काव्यप्रकाश 10/83*
18. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 6/51*
19. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 6/72*
20. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 11/8*
21. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 7/107*
22. *काव्यप्रकाश 10/109*
23. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 6/41*
24. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 8/43*
25. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 9/14*
26. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/16*
27. *काव्यप्रकाश 10/सू. 137*
28. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/16*
29. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 3/49*
30. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 3/58*
31. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 8/78*
32. *काव्यप्रकाश 10/132*
33. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/49*
34. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/52*
35. *काव्यप्रकाश 10/107*
36. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 5/2*
37. *काव्यप्रकाश 10/118*
38. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 4/60*
39. *साहित्यदर्पण 10/56*
40. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/37*
41. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 2/38*
42. *काव्यप्रकाश 10/111*
43. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 10/18*
44. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 10/32*
45. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 10/37*
46. *परशुरामोदयम् महाकाव्य 10/26*